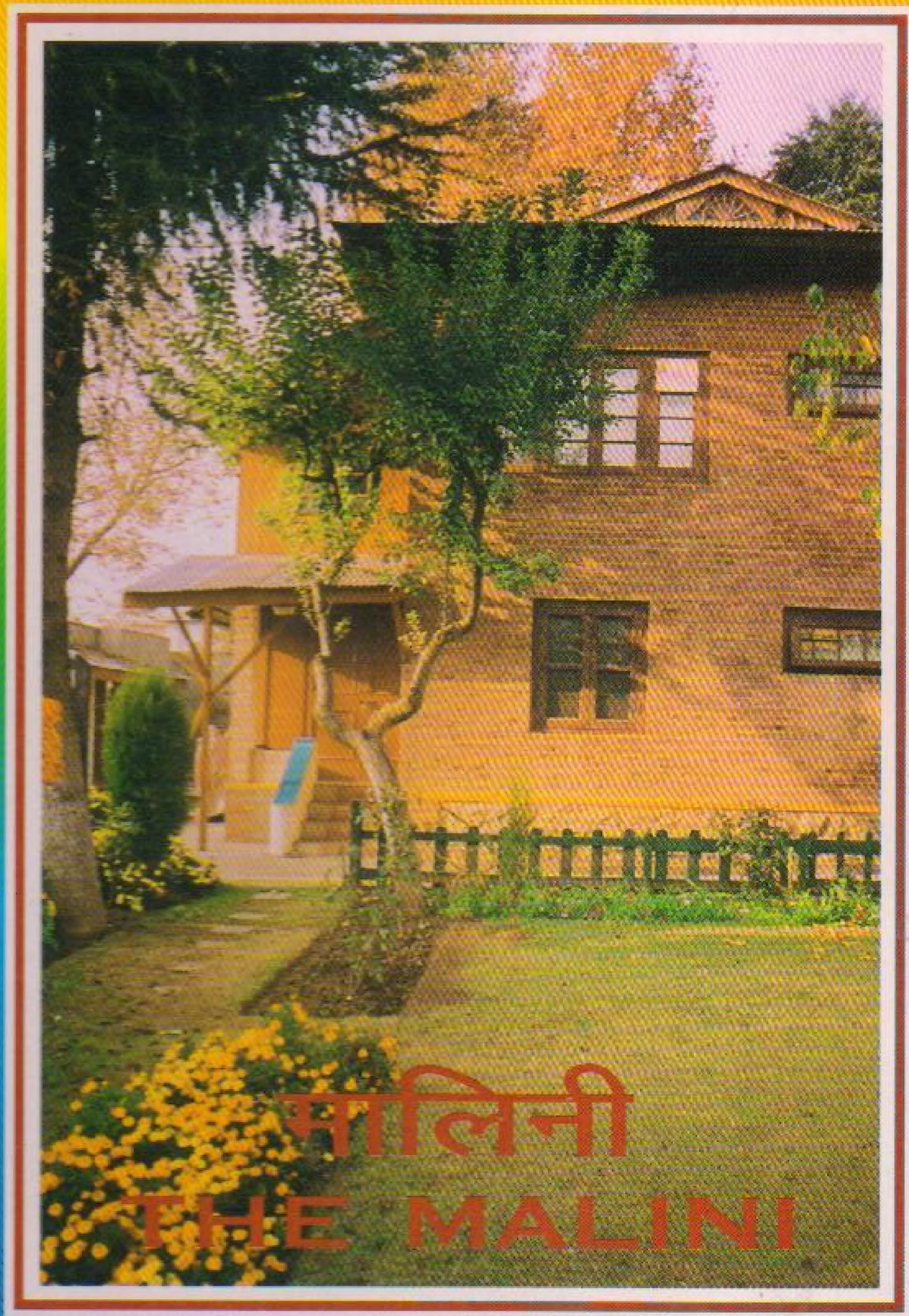


OCTOBER, 2003



ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR



मालिनी THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।

भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

*Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union
with her all the treatises of non-dualistic
order achieve the nature of divine potency.*

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :

Sri Inderkrishan Raina

(Secretary/Trustee)

Sri Samvit Prakash Dhar

Sri Brijnath Kaul

Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :

Sushri Prabhadevi

Prof. Nilakanth Gurtoo

Prof. Makhanlal Kukiloo

Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan

(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :

Ishwar Ashram Trust

Ishber (Nishat), Srinagar, Kashmir

Tel.:0194-2461657

Head Office :

Ishwar Ashram

Ishber (Nishat), Srinagar, Kashmir

Tel.:0194-2461657

Administrative Office :

Ishwar Ashram Bhawan

2-Mohinder Nagar

Canal Road

Jammu Tawi - 180 016

Tel.:2501199, 2555755

Delhi Office :

Ishwar Ashram Bhawan

R-5/D Pocket, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044

Tel.:26958308, 26974977

Telefax: 26943307

October, 2003

Price : Rs. 25.00

Yearly subscription : Rs. 100.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust

by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 2328-1568, 2327-1568

विषय सूची : Contents

संपादक की लेखनी से		4
01. Śiva Sūtras	Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa joo Mahārāja	7
02. Un-noticed Impact of Saivism on Indian Philosophical Thought	Dr. B. N. Pandita	13
03. Science and Kashmir Shaivism	Prof. Makhanlal Kukiloo	17
04. How the Ganga Cast her Spell	Dr. Sarla Kumar	22
05. अतीतमंथन	ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज का वचनामृत	23
06. गीता-माहात्म्य	सुश्रीप्रभादेवी	23
07. शैवदर्शन के वातायन से	प्रो० नीलकंठ गुर्दू	32
08. लल्लेश्वरी	डा० जागीर सिंह	34
10. From Ashram Desk	Administrative Office	39

संपादक की लेखनी से



सद्गुरु महाराज की पावनतम निर्वाण जयन्ती के पश्चात् प्रकाशित होने वाला मालिनी का यह अंक प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है। यह पावन पर्व, सद्गुरु महाराज के अपार वैभव, मंगलकारी संकल्पों का सिद्धिदायक, अनन्तशान्तिदाता ज्ञान ज्योति से नित्य प्रकाशकर्ता और समस्त संसार के भटके प्राणियों को सच्ची राह दिखानेवाला है। जिन ईश्वरस्वरूप लक्ष्मणजी महाराज के सहज स्वरूप का वर्णन वाणी द्वारा अथवा मन से मनन करना असंभव है, जिनका शब्द चित्रण करना टिट्ठिभपक्षी (बटेर) द्वारा सागर को सुखाना तुल्य है। जिनकी स्थिति में इतनी विचित्रता है कि मानों हजारों भाव समाधियां उनके चारों ओर मदमत्त होके नृत्य कर रही हैं। जिस सद्गुरु को परम इष्ट कह कर सहजोभाईने “राम से भी उत्कृष्ट माना है, जो भयानक तूफान से छुटकारा दिलानेवाला, रोग और भोग के पाशों को काटनेवाला और संसार के अंकुर का कारण अज्ञान का विनाशक है उसी सद्गुरु महाराज के लिए सहजोभाई “राम” का परित्याग करने से नहीं झिझकी पर सद्गुरु विरह को पलभर के लिए भी नहीं सहन कर सकी। हमारे सद्गुरुदेव सहजआनन्द में मग्न रहकर अपने में तथा प्रकृति के अणु अणु में चिर नवीन आनन्द का रसास्वादन करते रहते हैं। उनकी आनन्द भूमिकायें कृपामयी धाराओं में उमड़ती हुई चारों ओर प्रवाहित होती हैं तथा उपासना, कर्म और ज्ञाननिष्ठ जीवों को अनन्त सिद्धियां प्रदान करती रहती हैं। सारी सांसारिक सृष्टि त्रिगुणात्मिका है अर्थात् सतोगुण रजोगुण और तमोगुण प्रधान है, पर सर्वश्रीविभूषित हमारे सद्गुरुदेव का स्वरूप सतोगुणमय तथा सत्त्वगुण की साक्षात् मूर्ति होने से केवल सत्य स्वरूप है। दयामय सद्गुरुदेव अनेक मतमतान्तरों में भटके हुए जीवों को ज्ञान ज्योति से प्रकाशित कर सूर्यमण्डल के समान आलोकित करता रहता है। गुरुदेव, साक्षात् शिव ही हैं अतः उनकी आराधना सारे देवी देवों की आराधना है। जैसे भौरे मकरन्द की याचना में लगे रहते हैं और जी भर के मकरन्द का आस्वादन कर लेने पर भी उनकी तृप्ति ही नहीं होती उसी प्रकार हम आपके प्रिय भक्त आपके अलौकिक गुणों की रात दिन दीक्षा लेकर बार बार तृप्त हो जाने पर भी लुब्ध हैं। ऐसे लोकोत्तर गुणों से युक्त आपका स्वरूप, जोकि सांसारिक जीवनमृत्युरूपी रोग की एकमात्र महौषधि है, अज्ञान पीडित प्राणियों के कल्याण के लिए उनके मन में लगातार प्रतिक्षण रमण करता रहे। जय गुरुदेव॥

यह अतीव हर्ष का विषय है कि हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी सद्गुरु महाराज का पावन निर्वाण दिवस श्रीनगर जम्मू और दिल्ली के ईश्वर आश्रम भवनों में धूमधाम

से मनाया गया। असंख्य भक्तजनों, श्रद्धालुओं प्रेमियों और सत् शिष्यों ने सम्मिलित होकर तीनों केन्द्रों पर आयोजित महायज्ञों में अपने श्रद्धासुमन समर्पित करके सद्गुरुदेव की कृपा का सौभाग्य प्राप्त किया। इस वर्ष श्रीनगर के प्रधानकेन्द्र पर छः सौ से अधिक भक्तों ने महायज्ञ की समाप्ति पर प्रसाद पाकर अपने को कृतकृत्य माना। इस प्रकार की भीड़ का वहां पर इस वर्ष एकत्रित होना इस सत्य का सूचक है कि सद्गुरुमहाराज की भविष्यवाणी का प्रभाव धीरे-धीरे होने लगा है और शीघ्र ही वह दिन आयेगा जब प्रेमी जनों व श्रद्धालुओं की भीड़ इतनी होगी कि पैर धरने की जगह ईश्वर आश्रम परिसर में नहीं मिलेगी ॥ तथास्तु ॥

जम्मू स्थित ईश्वर आश्रम भवन में भी श्रद्धालुओं का तांता देर रात तक लगा रहा। हजारों भक्तों ने दिनभर व्रत रखकर अपनी भक्ति का अटूट परिचय दिया। यज्ञ समाप्ति पर प्रसाद पाकर तथा यज्ञ कर्म में हाथ बटाकर भक्तजनों ने अपना जीवन सार्थक माना।

सरिता विहार दिल्ली स्थित निर्माणाधीन ईश्वर आश्रम भवन की गाथा भी इस वर्ष अनूठी ही थी। सरिता विहार के आसपास के सारे इलाके तेज वर्षा के प्रकोप से इस पावन दिन पर अत्यन्त प्रभावित हुए पर अचम्भे की बात है कि सद्गुरुदेव के अनुग्रह के फलस्वरूप ईश्वर आश्रम भवन और उसके आसपास का क्षेत्र इस वर्षा से प्रभावित नहीं हुआ। जिसे देखकर दूर दूर से आये भीगे हुए भक्त जन आश्चर्य चकित हुए और सद्गुरु महाराज की असीम कृपा का गुणगान करने लगे।

यह प्रसन्नता का विषय है कि इस वर्ष आश्रम भवन के मोहक परिसंवर्धित परिसर में निर्वाण जयन्ती का यज्ञ पहली बार रचा गया। मारबल पत्थरों से शोभित इस यज्ञस्थली की आभा कुछ अवर्णनीय थी। वेदमन्त्रों की तथा स्तुति स्तोत्रों की गूंज से सारा आसपास का प्रदेश गूंज रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि उस दिन स्वर्गपुरी से सारे देवगण अपने इष्ट की आराधना करने के लिए मर्त्यलोक में पधारे थे। श्रद्धालुओं की भारी भीड़ ने इस मोहक दृश्य को और भी रमणीय और आकर्षक बनाया था। सुदूर स्थानों से पधारे भक्तगण इस विलक्षण यज्ञ की पूर्णाहुति में भाग लेकर आनन्दमग्न हुए तथा अमृतमय हुतशेष की प्रसाद प्राप्ति से झूमने लगे।

इस बात का उल्लेख करना असंगत नहीं होगा कि सरिता विहार दिल्ली स्थित ईश्वर आश्रम भवन भैरव मन्दिर का निर्माण कार्य भी प्रारंभ हो गया है। आशा है कि विधि विधानपूर्वक इसकी प्रतिष्ठा का कार्य उचित मुहूर्त पर किया जायेगा। आश्रम भवन के निर्माण कार्य में युवा इन्जीनियर श्री देव जी मुन्शी ने निरन्तर रूप से समुपस्थित रहकर जिस उत्साह, लगन और कर्तव्य निष्ठा का परिचय दिया वह उल्लेखनीय है। दिल्ली ईश्वर आश्रम भवन के संयोजक श्री अवतार कृष्ण गंजू विशेष धन्यवाद के पात्र हैं कि इनकी ही देखरेख में वर्तमान भवन का ढांचा साकार हो उठा और समय समय पर भक्तों के दिये सुझावों के अनुरूप

अपनी भवन निर्माण कला चातुर्य से हमें अवगत कराया। इनकी निस्वार्थ सेवा परिणाम-स्वरूप ही छोटे से छोटे दानियों को लेकर बड़े-बड़े दानवीरों ने मुंह मांगी दान राशि इन्हें प्रसन्नता से देकर अपना जीवन सार्थक समझा और सद्गुरु महाराज के लिए अटूट श्रद्धा व अडिग प्रेमभाव का प्रदर्शन किया।

पुनः हम एक बार उन दानवीरों के आभारी हैं जो समय-समय पर हमें मुंहमांगी धन राशि देकर अपनी दानवीरता का परिचय देते हैं। ऐसे दयाशील दानी सन्तों की सदा इस जग में जय जयकार हो। ईश्वरस्वरूप सद्गुरु महाराज से हमारी यही विनीत प्रार्थना है कि हमारे ये सारे दानवीर फले फूले और आध्यात्मिक मार्ग में अग्रसर रहें। इस बात से सारे दानवीर परिचित रहें कि इन दानवीरों की दी हुई छोटी सी छोटी धनराशि का या बड़ी सी बड़ी धनराशि का लेखा जोखा सद्गुरु महाराज की दिव्य दान पुस्तिका में बराबर दर्ज है।

समस्त ईश्वर आश्रम परिवार की ओर से दीपावली की मंगलमय कामनायें।

जय गुरुदेव

दीपावली 25 अक्टूबर 2003

— प्रो. मखनलाल कुकिलू

आवश्यक सूचना

अतीव हर्ष का विषय है कि दीपावली से
आर - 5 डी पॉकेट, सरिता विहार, नई दिल्ली स्थित
ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज का
ईश्वर-आश्रम भवन
प्रातः सात बजे से सायं आठ बजे तक
सदा खुला रहता है।

सद्गुरु भक्त व प्रेमी यथांकित समय पर किसी भी समय
पधार कर सद्गुरु दर्शन से अनुगृहीत हो सकते हैं।

दर्शनाभिलाषी:

अवतार कृष्ण गंजू

संयोजक

दिल्ली केन्द्र

प्रार्थी

इन्द्रकृष्णरैना

सचिव / ट्रस्टी

ईश्वरआश्रम, ट्रस्ट कश्मीर

पूछताछ: फोन: 011-26974977, 26943307, 26958308

ŚIVA SŪTRAS

Vimarśinī Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa joo Māharāja

(Continued from last issue)

एवंविधस्य अस्य जगन्नाट्यनर्तकस्य भूमिकाग्रहण पदबन्ध-स्थानरङ्गमाह-

Such a Yogi has become the dancer of this drama of the universe. This way of acting is explained in the following Sūtra:-

रङ्गोऽन्तरात्मा ॥ १० ॥

(Rango'ntarātmā)

(Movement attributed in this totality of cosmic dance is nothing other than the supreme being.)

रज्यतेऽस्मिन् जगन्नाट्य, क्रीडा प्रदर्शनाशयेन आत्मना, इति रङ्गः= तत् तत् भूमिकाग्रहणस्थानम् अन्तरात्मा-संकोचावभास सतत्त्वः शून्य प्रधानः प्राणप्रधानो वा पुर्यष्टकरूपो देहापेक्षया अन्तरो जीवः। तत्र हि अयं कृतपदः स्वकरण परिस्पन्द क्रमेण जगन्नाट्यं आभासयति। तदुक्तं च श्रीस्वच्छन्दे-

पुर्यष्टक समावेशात् विचरन् सर्व योनिषु।

अन्तरात्मा स विज्ञेयः इति॥

There are three kinds of souls - namely the universal soul the external soul and the internal soul. In this universal drama neither the universal soul, nor the external soul is the player. It is the internal soul alone that is the player. Internal soul is called पुर्यष्टक (Puryaṣṭaka) consisting of eight constituents namely five subtle elements and मन (mind) बुद्धि (intellect) and अहंकार (ego).

अभिनय the acting is of three kinds namely सात्विक (sātvika) अभिनय, राजस (Rājasa) अभिनय and तामस (Tāmasa) अभिनय। सात्विक अभिनय (sātvika acting) is that when the spectators are convinced that this actor is not a person he is actual Rama, राजस अभिनय (Rājasa acting) is that while acting one feels himself also, तामस अभिनय (Tāmas acting) is that while the actor feels that he is not Rāma he is only an actor. रंग means the playing just to reveal the universal drama. This whole universe is actually drama तत् तत् भूमिका ग्रहण स्थानम्- the place of stage where he holds the various ways of

becoming the actor, अन्तरात्मा संकोचावभाससतत्त्वः शून्य प्रधानः, प्राणप्रधानोवा पुर्यष्टकरूपो देहापेक्षया अन्तरो जीवः— this whole acting is done by internal soul which is one, अन्तरात्मा। Because he is shrunk from the expansion of universality. It is this self in which the soul is residing in the शून्यप्रधानः— void state, प्राण प्रधानो वा पुर्यष्टकरूपः— in the dreaming state or in the deep sleep state. देहापेक्षया अन्तरोजीवः— it is the external soul which resides in the waking state. तत्र च अयंकृतपदः स्वकरण परिस्पन्द क्रमेण— there he puts his step in the field of drama by infusing the movement of arms or limbs. Some times he weeps sometimes laughs and some times he is joyful. In fact he is neither laughing nor weeping he is one just as he has always been.

तदुक्तं च श्री स्वच्छन्दे— this is already explained in स्वच्छन्दः (svacchanda Tantrā)

पुर्यष्टक समावेशात् विचरन् सर्वयोनिषु। अन्तरात्मा स विज्ञेयः— by entering in the subtle body of पुर्यष्टक (Puryaṣṭaka) that body which is found in dreaming state, deep sleep state, void state and also remains after death) he enters and takes journey to each and every womb in this universe. It is really known as अन्तरात्मा (the internal self).

इत्थं अन्तरात्मरङ्गे नृत्यतोऽस्य—just one who plays the holding of self for him this drama is—

प्रेक्षकाणीन्द्रियाणि ॥ ११ ॥

(Prekṣakāṇīndriyāṇi)

The spectators in this cosmic Dance, are one's own cognitive and active organs.

योगिनः चक्षुरादीनि इन्द्रियाणि हि संसार नाट्य प्रकटन प्रमोद निर्भरं स्व स्वरूपं अन्तर्मुखतया साक्षात्कुर्वन्ति—तत्प्रयोग प्ररूढ्या विगलित विभागं चमत्कार रस संपूर्णतां आपादयन्ति।

यत् श्रुति—

कश्चित् धीरः प्रत्यगात्मानं ऐक्षत् आवृत्तचक्षुः

अमृतत्वमश्नन्॥ इति।

योगिनः— for such a yogi, not for worldly people चक्षुरादीनि इन्द्रियाणि हि— his cognitive organs, साक्षात्कुर्वन्ति— perceive स्वस्वरूपं— the real nature of universal being अन्तर्मुखतया— internally not externally. संसारनाट्य प्रकटन

प्रमोद निर्भरं— yogi knows he is playing and this universe is just a drama filled with joy and sorrow. तत्प्रयोग प्ररूढ्या— by these organs when reality of self is revealed, विगलित विभाग— the differentiatedness is vanished चमत्कार रस संपूर्णतां आपादयन्ति— and these organs become filled with universal joy and absolute independence. यत् श्रुतिः— this is said in Katha upanisad—

कश्चित्धीरः— there are very few heroes, प्रत्यगा-त्मानं ऐक्षत्— who experience the reality of their own nature, आवृत्तचक्षुः= in an internal way rather than external way अमृतत्वं अश्नन्— (these heroes are always contented in internal being, external way is lost for them.

अस्य च— for such a yogi—

धीवशात् सत्त्व सिद्धिः ॥ १२ ॥

(Dhīvaśāt sattva siddhih)

(Purity and completion of this dance is accomplished by establishing the supreme subtle awareness of intelligence.)

धीः—सात्त्विक स्वरूप विमर्शन विशारदा (विशदा) धिषणा तत् वशात् सत्त्वस्य—स्फुरतात्मनः सूक्ष्मस्य आन्तर परिस्पन्दस्य, सिद्धिः—अभिव्यक्तिः भवति नाट्ये च सात्त्विकाभिनय सिद्धिः बुद्धि कौशलात् एवं लभ्यते॥

धीः—सात्त्विक स्वरूप विमर्शन विशारदा (विशदा)— the supreme intellect skillful (pure) perceiving the real nature, धिषणा— intellect, तद्वशात्— by directing that kind of intellect सत्त्वस्य—स्फुरतात्मनः सूक्ष्मस्य आन्तर परिस्पन्दस्य, सिद्धिः अभिव्यक्तिर्भवति— the reality of self takes place. सात्त्विक state of अभिनयः— acting is achieved only by real nature of self. There are some yogi they feel they act in सात्त्विक अभिनय, some feel they act in राजस अभिनय and some feel they act in तामस अभिनय। Those who feel that they are doing सात्त्विक अभिनय there awareness is filled with reality of self nature. आंगिक (āngika) वाचिक (vācika) आहार्य (ā hārya) and सात्त्विक (sāttvika) are the main conditions for this true acting. आंगिक condition is related to bodily actions. वाचिक condition is related to expression of words, in आहार्य condition the actions of the person being depicted are conveyed by dress and ornaments and in सात्त्विक अभिनय only internal feelings play important role. नाट्येच— in drama सात्त्विक अभिनय सिद्धिः— the perfection of सात्त्विक अभिनय, बुद्धि कौशलादेव

लभ्यते— is achieved by the dexterity of the supreme intellect.

एवं स्फुरत्तात्मकं सत्त्वासादनादेव अस्य योगिनः—

So when this real nature is held by such a yogi for him

सिद्धिः स्वतन्त्रभावः ॥ १३ ॥

(Siddhah svantantra bhāvah)

the state of utter freedom exists spontaneously.

सिद्धिः—संपन्नः, स्वतन्त्रभावः—सहजज्ञत्व-कर्तृत्वात्मकम्,

अशेष विश्ववशीकारि स्वातन्त्र्यम्।

सिद्धि संपन्नः—achieved, स्वतन्त्रभावः—the state of complete independence, सहजज्ञत्वकर्तृत्वात्मकं— this lies in all knowledge, all actions and all will. अशेष विश्ववशीकारि स्वातन्त्र्यम्—this whole universe is at the disposal of such a yogi what ever he wills that takes place.

यदुक्तं श्रीश्रीनाथ पादैः— This is already said by श्रीनाथ-पाद (a great Yogi) Śrī śrī Nāthpāda is known by the name of Airakanatha (एकनाथ) also. He was the originator of Kālīsāstra. This very एकनाथ is called by the name of Avatāraka nātha or Śivānandanatha also. His seat was in उड़ियानपीठ।

श्रयेत्स्वातन्त्र्यशक्तिं स्वां साश्रीकाली पराकला॥

We must own that energy of absolute independence which is really the energy of भैरवः।

श्रीस्वच्छदेऽपि—it is said in svacnanda Tantrā also

सर्वतत्त्वानि भूतानि मन्त्रवर्णाश्च ये स्मृताः।

नित्यं तस्य वशास्ते वै शिवभावनया सदा॥

सर्वतत्त्वानि—all elements भूतानि—all individuals मन्त्रवर्णाश्चये—all sentences and all words are said to be नित्यं—always तस्यवशाः under his command and are dependent on such a yogi शिवभावनया सदा—because he is alway intending to find out the reality of S'iva. There are three kinds of elements namely प्रत्यक्षसिद्ध, अनुमान सिद्ध and अप्रत्यक्षसिद्ध। प्रत्यक्षसिद्ध elements are known as five महाभूत, अनुमानसिद्ध elements are said to be from kalā element to S'iva element and अप्रत्यक्षसिद्ध elements are said to be सर्वतत्त्वानि all thirty six elements.

एष स्वतन्त्रभावोऽस्य—this absolute independence for such a yogi—

यथा तत्र तथान्यत्र ॥ १४ ॥

(Yathā tatra tathānyatra)

this kind of absolute freedom is enjoyed by him in internal state (समाधि) and in external state also (व्युत्थान)

यत्र देहे योगिनः स्वाभिव्यक्तिर्जाता तत्र यथा तथा

अन्यत्र सर्वत्र सदावहितस्य सा भवति।

योगिनः यत्र देहे—where ever this Yogi has स्वाभिव्यक्तिर्जाता—experienced the reality of self in समाधि, तत्रयथा—as is experienced by him there तथा अन्यत्र सर्वत्र सदावहितस्य सा भवति—that very reality is being experienced by him in व्युत्थान or in external world also. He finds no difference in samādhi or in vyuthāna because सदावहितस्य—he is blessed by supreme awareness always.

यथोक्तं श्रीस्वच्छन्दे—as is said in svacchands Tantrā also:—

स्वच्छन्दश्चैव स्वच्छन्दः स्वच्छन्दो विचरेत् सदा। इति He is always independent he moves here and there independently he is independent every where :

श्रीस्पन्देऽपि—in Spanda also it is said—

लभते तत्प्रयत्नेन परीक्ष्यं तत्त्वं आदरात्।

यतः स्वतन्त्रता तस्य सर्वत्रेयमकृत्रिमा॥ इति॥

that reality of self should be sought with great reverence because that unartificial universal independence will shine every where.

Just to infuse the thought that I am a Śiva, a yogi must be actually Śiva. He must not be artificial. Although he has achieved independence in all fields still he has to remain active for whole life. He has not to relax that is prohibited for him.

न चैवमपि उदासीनेन अनेन भाव्यं अपितु—so after realising the truth he has to remain active throughout life.

बीजावधानम्॥ १५॥ कर्तव्यं इतिशेषः

(Bijāvadhānam)

(Even ater such achievement one has to remain aware in contemplating on the seed of universal being)

बीजं—विश्वकारणं स्फुरत्तात्मा पराशक्तिः—germ is realized in samādhi as the cause of this whole universe, स्फुरत्तात्मा—supreme energy पराशक्तिः—great power यदुक्तं श्रीमृत्युजित् भट्टारके—as is said in नेत्र तन्त्र—

सा योनिः सर्वदेवानां शक्तीनां चाप्यनेकधा ।

अग्नीषोमात्मिका योनिस्ततः सर्वं प्रवर्तते॥

that supreme energy of Lord Śiva is the cause of the whole organic world the cause of all energies and cause of प्राण and अपान outgoing and incoming breath in other words this is the universal cause.

तत्र परशक्त्यात्मनि बीजे, अवधानं—भूयो भूयः चित्त निवेशनं कार्यं—that yogi has to put his mind and intellect on that point again and again in continuity.

(to be continued)

MALINI - Quarterly Magazine

Annual Subscription : Rs.100.00

Price Per Copy : Rs.25.00

Overseas Subscription : US\$25.00

All correspondence & subscription must be sent to the Administrative Office :

Ishwar Ashram Bhawan

2-Mohinder Nagar, Canal Road

Jammu Tawi - 180 002.

Tel. : 2501199, 2555755

Information regarding printing & publishing, etc. can be had from Branch Office:

F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044

Phone : 26943307

Un-noticed Impact of Saivism

on

Indian Philosophical Thought

– Dr. B. N. Pandita

The perfect academic development of monistic Śaiva philosophy was accomplished by some highly advanced scholar-saints of Kashmir between the eight and the eleventh centuries of Christian era. It was then known either as Śivādvaita or Íśvaradvaita and its practical aspect was called either as Tryambaka or as Trika school. Mādhavācārya (in the twelfth century) gave it the name as Pratyabhijñā and the research scholars of the present age call it Kashmir Śaivism, simply because its academic development happened in Kashmir and its tradition continues to flow on in that part of country. In its fully developed form it is one of the latest schools of Indian philosophy and its real essence is even now known very little outside Kashmir because the tradition of its teaching and learning did not, till the recent age got encouragement in prominent centres of Sanskrit learning, though some students and scholars have lately started to do research work on it for the attainment of doctor's degrees. Chances of its wide spreadness in other areas of Indian thought have been very remote. Remoteness of its main centres of learning and political disturbances in the north west of India stood in the way of its spreadness in other centres of learning in India. Some of its practical doctrines were living in an order of half mad roaming saints in Kashmir Valley even upto the time of the present exodus of Pandits from the Valley. Such tradition of roaming saints was given its start by Lallesvari in the fourteenth century. Several mystic poets appeared in such order of half mad saints and composed such philosophical songs in Kashmiri as suggest some central principles of Kashmir Śaivism.

So far as the account of the basic origin and tradition of Kashmir Śaivism, as given by Somanada in his Śivadrsti and as expressed by Abhinavapupta on the basis of scriptural authority, the monistic philosophy of Kashmir Śaivism, as well as the Trika system of its practical aspect, both had basically, a very ancient and prehistoric tradition and were given just a fresh reorientation by Tryambakāditya, the 21st degree ancestor of Somanand some time about the 3rd or the 4th century A.D. when its actual practice had

more or less, disappeared from this world on account of a forceful advent of the age of Kaliyuga. But some historical evidences of its ancient prevalence in India in the hoary past are still available :-

One of the highest techniques of Trika-yoga, the practical aspect of Kashmir Saivism, is termed as Śāmbhava-upāya and one of its highly important practices is termed as Śāmbhavī-mudrā, which yields quickly a direct realization of the theistic absolutism as the very essential character of one's real self, the only monistic reality of an absolutist and theistic-character. Spontaneous revelation of the truth, brought about through the practice of some higher aspects of Śāmbhava-yoga, conducted with the help of Śāmbhavi mudrā has all along been the main source of the revelation of the truth expressed by some yogis as the highest philosophy of life. Such mudrā consists of an erect physical posture in padmāsana, with one's eyes half shut, his sight falling loosely towards the tip of his nose and his mind standing still like the flame of a lamp, shining at a place free from flowing wind, and turning about inwardly to face only the psychic lustre of the transcendental and pure I-consciousness of ones self, withdrawn, for the time being, from his mental apparatus and physical form. In addition, such mudra includes an escotric practice regarding the position in which the yogi has to keep his tongue sticking closely to his palate. The whole process of the practice of such mudrā is to be preceded by a regular practice in a special type of prāṇayāma, termed as narisodhana. Sivayogis generally describe such mudrā quite clearly and perfectly, that is just to avoid any possible misuse of its results by any unworthy practitioner. A few items of such practice can be seen in some very ancient source of Indian history and such a thing proves the historical fact of the prevalence of the practice of such yoga in India right from the prehistoric hoary past.

The remains of Indus-valley civilization prove it beyond doubt that people of India in the third millenium B.C. were such Śaivas who practised Śāmbhavī-mudra and worshiped Śiva and Śakti. A figure of a Śivayogi, sitting in the posture of Śāmbhavamudrā can be seen along with some terracota figures of yogins guarded on both sides by erectly standing serpents. The typical position of eyes in such mudrā can be seen in the bust of a Śivayogin. Sakti-worship has all along been an essential and an integral element of practice of Sivayogins and we can find clay figures of Mother goddess, Śakti in the remains of Indus valley civilization. The apparent

element of sex has all along been an important part and parcel of Tāntric Śaivism and two figures of realistically chissald lingas have been discovered at Gudinalam in Andhra and the site of Shata-lingam in the west U.P. Besides, typical yoni-figures can be seen in such ancient remains at Mugal-Gundai in Ballochistan. All such remains of ancient Indian culture bear clear evidence to the prevalence of Tantric Saivism in India, right from the hoary past of the Harrapan culture. Such discoveries prove it beyond doubt that many important Tantric practices of such ancient Śaivism were popularly prevalent in India long before the spread of Vedic culture in the Indus basin.

The principle of absolute monism of Indian philosophy can neither be a result of practice in Vedic fire worship nor of mere logical or practical thinking. Its definite basic source can be an intuitive realization of the truth, brought about by means of practice in the Trika-yoga of kashmir Saivism. No mention of any practice of yoga can be found in R̥gveda. Even the use of the word 'yoga', in the sense of such practice, does not occur anywhere in that Veda. Its earliest mention in such sense, in the whole Vedic literature, is found in Katha-upanishad and it indicates the fact that the system of yoga-practice was later picked up by Vedic aspirants from the Śaivas of the Indus Valley, sometime in the period of the composition of metrical upanishads. Śvetāsvatara, taken by historians as one of the later Upanishads, is clearly Saivite in character, unlike the more ancient upanishads. Picking up of yoga practice by ancient Vedic Indians is thus one of the earliest items of a strong impact of prehistoric Saivism on the ancient Vedic people in the case of their religion and philosophy.

Its still earlier impact on Vedic philosophical thought is the clear expression of monism in comparatively later portions of R̥gveda itself. The religio-philosophical principles of Vedic Aryans were originally polytheistic in character. Monism, or even monotheism, is totally absent in the oldest portions of R̥gveda, known at present as its "Family Books". Its earliest expressions in such Veda is found in Purusa-sukta and Vāgambhrnīya-Sukta both belonging to its tenth Mandala, taken by historians of Vedic literature as its latest chapters composed by Vedic sages long after the nine Mandalas prior to it. Such development can have happened as a result of sufficient cultural give and take between the originally living Śaivas and later Vedic settlers in the Indus basin.

Saiva monism has had sufficient impact on our religious thinking and practice during the period of ancient Smrites. For instance, intuitive realization of the real nature of the self has been accepted in the Śruti of Yajñavalkya, as the highest of all religious activities and aims and such realization has been said as the result of Yoga-practice :

एष वै परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम्

The Śmṛti goes sufficiently ahead in describing briefly some esoteric elements of the Śaivite Śām bhavi-mudra as recorded thus—

ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये न्यस्योत्तरं करम्।

उत्तानं किञ्चिदुन्नाम्य मुखं विष्टभ्य चोरसा॥

निमीलिताक्षःसत्त्वस्थो दन्तैर्दन्तानसंस्पृशन्।

तालुस्थाचल जिह्वश्च संवृतास्यः सुनिश्चलः॥

सन्निरुद्धयेन्द्रिय-ग्रामं नातिनीचोच्छ्रितासनः।

द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्राणायाममुपक्रमेत्॥

ततो ध्येयः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत् प्रभुः।

धारयेत्तत्र चात्मानं धारणां धारयन् बुधः॥ (Y. S.)

That was the hoary past when the Sanskrit term — padmāsana had not yet been coined by writers in yoga.

Impact of such prehistoric Saiva monism can be seen frequently in the later parts of Mahabharata. Such impact developed further in works on asiatic literature, the Yoga-Vāsistha. Avadhūta-gīta mentions not only the three upayas of the Trika system, but also some other important technical terms of such system of practical saivism; (e.g.: pind. pada, rūpa):

न शाम्भवं शाक्तमथाणवंचवा। पिण्डं च रूपं च पदादिकं न वा॥

to be continued



Science and Kashmir Shaivism

— Prof. Makhanlal Kukiloo

The conviction that the infinite, beginningless and endless consciousness is the real knowledge, can be acquired only through one's own right thinking and honest effort. No other agency than one's scientific outlook can bring this Truth home to one. The goal of all philosophical thinking is Truth. The Reason is the guide and the experience is the source. A sincere science student should keep always all the windows of his heart open to receive light from all directions but should not depend to any particular creed or scripture. If the scriptures make some statements which are illogical or irrational and against the values of experience, their authority is to be questioned. As is said एष सर्वपदातीतो बोधः सम्प्राप्यते परः। This scientific knowledge is supreme and cannot be challenged. It is this scientific knowledge, that helps us to identify the self. The self is not shown to us by any scriptures or by any master. It is seen by oneself through one's own knowledge acquired through one's own thinking. It is said

शास्त्रार्थः बुध्यते नात्मा गुरोर्वचनतो नच।

बुध्यते स्वयमेवैषः स्व बोधवशतस्तथा॥

Thus the self knowledge, in the fullest sense, is the actual living in the absolute experience. It is complete identification with the Divine Being.

This self realization has scientifically been explained by Kashmir Shaivism. Kashmir Shaivism or Shaiva System is a more comprehensive term representing all the dualistic, non-dualistic, and dualistic cum non-dualistic systems evolved from शैवागम or शैवतन्त्र। Shaiva System means any system based on Shaiva Tantra or *Aagamas*. 64 Systems of Shaiva cult are mentioned in the Shaiva Scriptures of Kashmir which include *Trika* as one of them. *Pratibhijñya* is the philosophical content of the *Trika*. It is so called by Utpaldeva the originator of the system. *Somananda* is the first to make a definitely rationalistic approach to the problem of the ultimate Reality. He clearly refers to the various prevailing schools of thought and rationally proves the unsoundness of their theories. He brings a radical change to the prevailing philosophical thoughts of the time. We can therefore say that it is *Somananda* who laid the foundation stone of new system known as the *Pratibhijñya* school of Kashmir and not the particular philosophic tradition existed before his time. This Kashmir

Shaivism is called *Trika* in Shaiva literature since it deals with the triple principle *Shiva, Shakti Anu Or Pati Paash Or Pashu Or Nara, Shakti And Shiva Or Para, Aparā, Parapara* on consisting of the three chief *Aagamas* namely *Sidha Nā-mak And Mālinī Or Bheda, Abheda Or Bedābheda* all the three systems or it teaches threefold method of Agamic realisation. When we ponder over the topic of today namely Science and Kashmir Shaivism, we are overwhelmed to find that the basic facts of Kashmir Shaivism are linked with the Scientific truths. First of all we take the theory of speech. In Physics importance of sound is known to all. This very sound is the basis of this theory of speech. Kashmir Shaivism defines four types of speech namely *Parā, Pasyanti, Madhyamā* and *Vaikhari*. *Parā* means supreme speech. It is that soundless sound which resides in your own universal consciousness. it is the life of the other three kinds of speech. *Pasyanti* is that speech which is without differentiation. You will only see that there is some sensation of seeing. You will not see anything. It is experiencing, observing but not seeing anything. *Madhyamā Vāk* is 3rd stage. It is between the highest speech *Paśyanti* and the lowest speech *Vaikhari*. It is that state where you reside in thoughts only. It is only mental state. It is without words, sentences or letters. When we are asleep and dreaming we are residing in *Madhyamā Vāk*. Fourth state of speech is called *Vaikhari*. It means gross rough speech. It is ordinary speech. Here we have to use our tongue & Lips. These states scientifically are called the supreme subtlest, subtle and gross. In fact it is said in our Shaivism that those who cannot enter into their real nature while listening to the sound of stringed instrument, have no capacity of concentration.

The theory of reflection is another scientific feat of Kashmir Shaivism. The students of physics are well versed with this theory of reflection. In Kashmir Shaivism it is called *Pratibimbavād*. As per this theory this universe is found in the reflector of God consciousness not through the agency of anything of which it is a reflection but through his absolutely independent will, when the universe is contained in a seed form. This theory of reflection is meant for advanced Yogis. This theory teaches them how to be aware in their daily activities while walking, tasting, smelling, touching, hearing etc. They see that all these actions move in their supreme consciousness where limited becomes unlimited.

Kashmir Shaivism lays stress on the science of *Kundalini* the serpent power, which has been overlooked by other philosophies. *Kundalini* is in discussion everywhere today. Shaivism explains that by piercing of six wheels the centres of energies, starting from *Mūlādhār* to *Sahasrār*, one

enjoys the supreme bliss, because this power is the revealing and concealing energy of Lord Shiva. Just as the energy of heat of fire and the energy of light are not separate from the fire itself, similarly the *Kundalini Shakti* is not different from the existence of Lord Shiva.

Much has been said about energy in scientific manuals. It commands important place in this field. In Kashmir Shaivism also energy has been discussed fully. Energy is named as Shakti. In the categories of 36 elements it is accepted as second element after Shiva. Its manifestation takes place almost simultaneously with the first, because unless there be consciousness of what is manifested how can it be said to have manifested at all? It is said :-

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।

नचेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

i.e. only if conjoined with Shakti Shiva would earn the privilege to become overlord, otherwise the God is not able even to stir.

In Shiva scriptures this energy is named as *Vimarsha Shakti* and Shiva is named as *Prakash Vimarshamaya*. The *Prakasha* aspect however is not the most distinctive aspect of the individual self because it is common to other things also, such as mirror, crystal, Jewel etc. If the individual self had been *Prakashmaya*, it would have been not better than a substance capable of receiving reflection. The *Vimarsa* stands for the distinctive aspect of the self. It signifies the capacity of the self to know itself in all its purity. The point has very clearly been explained by Abhinava Gupta in his *Pritibhijñā Vimarsini*. This very *Vimarsa* energy is spoken of as *Svatantrya* energy also because its existence does not depend upon anything else. Thus *Vimarsa* is that energy, that power which is ultimately responsible for keeping the universe in the state of perfect identity with itself at the time of destruction, and manifesting it as apparently separate from itself at the time of Creation.

The next basic topic of Kashmir Shaivism, in relation to science, is spanda school. Spanda means movement or vibration. *स्पन्दकारिका* the only book on this school has three *निष्पन्द* means vibration. The first vibration goes by the name of the vitality in real nature. The second goes by the energy in the rise of intuition and third vibration goes by the energy in and of *Glory* of Spanda. According to this school nothing can exist without movement. Where there is movement there is life, without it there is lifelessness. Some scholars are of this opinion that Spanda tattva exist

even in wakefulness, dreaming, deep sleep and Turyā state also. As is said in Spanda Karika of vasu Guptanatha.

तस्योपलब्धिः सततं त्रिपदाव्यभिचारिणी।

नित्यं स्यात् सुप्रबुद्धस्य

In an important Shaiva text षट्त्रिंशत् तत्त्व सन्दोह

Spanda is described as Shiva Tattva the highest Divine power.

यदयं अनुत्तरमूर्तिः निजेच्छया अखिलं इदं जगत् सृष्टुम्।

पस्पन्दे स स्पन्दः शिव तत्त्वं उच्यते तज्ज्ञैः॥

Thus about the establishment of Spanda principle Vasugupta says that one who is extremely exasperated or the one who is exceedingly pleased, or the one who is deeply considering what to do, or the one who on seeing the lion or on seeing the venomous snake, is running helplessly to and fro, is being established in Spanda principle there and then. More so even in the walking state one who is always in readiness to have the clearvision of Spanda principle, realizes his own nature very soon.

To sum up this Spanda it is said

स्पन्दात्मकं इदं विश्वं स्पन्दात् एव प्रवर्तते।

स्पन्दाय स्पन्दगर्भाय शिवः सर्वं प्रचोदयात्।

Means this whole universe is in the form of Spanda, this whole universe has emanated from spanda, this universe is nothing but Spanda may this divinepower direct all seekers on the right path of emancipation.

This Spanda literature which grew on the basis of Shiva Sutra does not represent any mannual of philosophy as the Pratyabhijna Shashtra does. It may be pointed out that Spanda branch of Trika has for its main subject matter the three mystical ways to the realization of the divine power i.e. Sāmbava, Śhākta and Aaṇava. They are mere dogmatic statements of the fundamental principles of the Spanda system.

Vijñāna Bhairva is very important Shaiva Agam scripture. It explains 112 Dhārnas - the yoic feets one by one. All these 112 Dhārnas are fraught with scientific truths. As per medical science we are breathing in and breathing out 21600 times in 24 hours. In vijñana Bhairva it is said that we are reciting sacred mantra unintentionally during this process because when we breath in we produce the sound of 'Ha' and when we breath out we produce the sound of Sa. In this way we are reciting Sa, Ha or Hamsa mantra which by constant reciting takes the form of Soham or Hamsah in reverse form. This sort of reciting mantra is called Ajapa Gayatri the

highest form of recitation. But it is shocking that we are unaware of this Mahāmantra. When we will attach awareness to our each and every breath we would realize our own nature instantly. This is our common way of entering into god consciousness. There are other numberless scientific ways, described in the above said book which are helpful for realizing our true nature.

Science of Recognition is the supreme aspect of Kashmir Shaivism. It is called here as Pratyibhiyñā Darshan. This principle has been explained by Shri Somānanda of 9th Century A.D. This is highest approach to reality and is applicable to those aspirants who have the highest ability. Acarya Utpaldeva quotes a typical example of Pratiyaabhiññā. He says

तैस्तैरप्युपयाचितैरुपनतः तन्व्याः स्थितोप्यन्तिके।

..... तत्प्रत्यभिज्ञोदिता॥

For example there is a damsel, whose marriage has been fixed with some one having excellent domestic qualities, educational background and other achievements. Without knowing or seeing each other they become day by day more and more impatient for their would be relation. Accidentally both are present at a place of pilgrimage but are having least impression of their relation. Without yielding any excitement the meeting ends. Suddenly some one knowing both of them and their would be relation, comes and reveals their identities. On hearing this their heart blooms with joy of love, their mind and bodies experience unparralled situation and both rejoice the occasion, like never before. Likewise utpaldeva syas, that a spiritual guru provides the necessary inspiration to an earnest aspirant at the spur of the movement which enables him to know the self which already he knows but is unaware of it. This is how the principle of Pratiabhiññā operates.

Lastly I would like to say that a theory of time and a theory of 118 worlds too has been scientifically illustrated by Abhinavgupta in his gigantic treatise namely "Tantrāloka". The dyoen of Kashmir Shaivism Abhinavgupta of 10th/11th century A.D. was greatest exponent of the philosophy of Shaivism which lays more stress on practice then to logical discourses. Apart from Abhinavgupta's erudition as a philosopher and being a versatile genius his contribution to Indian thought is remarkable.

To sum up "science is able to investigate for example the external nature and behaviour of the atom, but the practice of meditation bestows omnipresence, Yogi can become one with the atom".

(The Paper was read by the Writer in a Seminar organized by K.E.C. and S.S. Delhi some times back)

How the Ganga Cast her Spell

– *Dr. Sarla Kumar*

Usually any discourse on Hinduism tends to revolve round Vedānta and other schools do not get their due place. For a change the Trika Inter-religious Trust organized "A Workshop on Kashmir Śaivism: Text and practice." Dr. Bettina Baumer, an ardent devotee of our Gurudev Svāmī Lakṣmanjoo Mahārāja was the motivating spirit of the seminar.

The ambience was perfect - the Jain temple meditation hall on the banks of the Ganga, set the mood and tenor of the workshop. For the first time I had the occasion to listen to the lectures and expositions of Pt. Hemendra Nath Chakravarti, Prof. K.D. Tripathi and Prof. Kamlesh Jha. All three are well versed in the theory and practice of Kashmir Śaivism and had taught Hindu scriptures at the Banaras Hindu University. Prof. Kamlesh Jha is the grandson of Acharya Rameshwar Jha who composed our Gurustuti and was an illustrious disciple of our Master. The participants were interesting representations of students of Indology, Catholic priests, Italians, Austrians, Australians, Belgian, Japanese and Indians interested in Kashmir Śaivism. The weather was perfect.

The day started at 7.00 A.M. with yoga and meditation for two hours followed by lectures on fundamental topics of Kashmir Saivism and, in the afternoon, a study of the Malini Vijaya Tantra (we were all given photostat copies of the text) and a fascinating exposition of the upayas. The workshop was held from the 17th of February to the 1st of March, 2003. We broke for lunch at 1 o'clock and the afternoon session was conducted between 3:30 p.m. into the late hours of the evening. Our Gurudeva Svāmī Lakṣmanjoos presence and spirit inspired each and every person. It seemed as if he was there with us.

For the initiated and lay participants there was a great deal to learn. Kashmir Śaivism is like an ocean but even a condensed exposure is galvanizing. There was time for questions and discussion which made every one feel as if he or she was involved. Many points of view emerged and there was a healthy exchange of ideas. One session was also held in the Ma Anandamayi Ashram, and there was an excursion to the Varuna Sangam with its temple and the Krishnamurti Foundation.

There was a scintillating lecture on "Śiva the essence of consciousness" by Prof. Bettina Baumer at the Annie Besant Hall of the Theosophical

Society with musical renderings of the Śivastotrāvali by Smt. Manju Sundaram. Swamiji's birthday video gave the audience a whiff of the magical moments we all experienced in his presence. A boat ride on the Ganga, and the evening satsang left little more that one could ask for.

May Swamji give us all the strength of purpose to carry his message to the world. He was or rather is the sun and each one of us is a single ray which he illumined. Swamiji's keen desire was to perpetuate his teachings with honesty, sincerity and devotion.

गतांक से आगे

अतीत मन्थन

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजी का वचनामृत

सद्गुरवे नमः

नमः कारुण्यदेहाय वीराय शुभदन्तिने।

भक्तिगम्याय भक्तानां दुःखहर्त्रे नमोऽस्तु ते ॥ १४॥

कारुण्यदेहाय	= दयास्वरूप	शुभ	= कल्याण
वीराय	= बड़े वीर		कारक अथवा श्वेत
भक्ति	= भक्ति द्वारा	दन्तिने	= दान्तों वाले
गम्याय	= प्राप्त किये जा सकने वाले	ते	= आप गणेश जी को
भक्तानां	= अपने भक्तों के	नमः	= नमस्कार
दुःखहर्त्रे	= दुःखों को दूर करने वाले	अस्तु	= हो ॥ १४॥

यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ।

तं शक्तिचक्रविभवप्रभवं शङ्करं स्तुमः॥ १५॥

(वयं)	= हम	स्तुमः	= स्तुति करते हैं
शक्तिचक्र	= शक्तिचक्र संबंधी	यस्य	= जिसके
विभव	= ऐश्वर्य के	उन्मेष	= उन्मेष और
प्रभवं	= उत्पत्ति-स्थान	निमेषाभ्यां	= निमेष से
तं	= उस	(क्रमेणा)	= क्रमशः
शङ्करं	= महादेवजी की	जगतः	= संसार का

प्रलयोदयौ = नाश और उदय

(भवतः) = होता है। ॥ १५॥

पाठक इस श्लोक को देखकर कहीं भ्रमित न हों कि ईश्वर के उन्मेष से जगत का नाश और निमेष से जगत का उदय कैसे होता है। पारमार्थिक दृष्टि से ईश्वर के स्वरूप का विकास ही जगत के नष्ट होने का हेतु है और उसके स्वरूप का निमेष ही जगत के उदय का कारण है। ॥ १५॥

नमः शिवाय सततं पञ्चकृत्यविधायिने।

चिदानन्दधनस्वात्मपरमार्थावभासिने॥ १६॥

पञ्च	= (सृष्टि, स्थिति, संहार,	स्वात्मपरमार्थ= अपने स्वरूप
	पिधान और अनुग्रह	के तत्त्व को
	इन) पाँच	अवभासिने = उज्ज्वल रूप में
कृत्य	= कृत्यों की	दिखाने वाले
विधायिने	= रचना करने वाले	शिवाय = शिवजी महाराज को
चिदानन्दधन	= चिदानन्दधन रूपी	सततं = सदा
		नमः = नमस्कार
		(अस्तु) = हो ॥ १६॥

सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान तथा अनुग्रह—ये पाँच परमेश्वर के महान् कृत्य हैं। इन पाँच कृत्यों के द्वारा परमेश्वर क्रमपूर्वक जगत को उत्पन्न करता है, पालन करता है और पश्चात् इस जगत का संहार करने के अनन्तर इसको संस्काररूपता से अपने भीतर स्थापित करता है जिसका नाम पिधान है। कदाचित् अपनी अप्रतिहता स्वातंत्र्यशक्ति के द्वारा इस संस्कार का भी मूलोच्छेदन करता है—यह पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह कहलाता है। ॥ १६॥

आश्यानं चिद्रसस्यौघं साकारत्वमुपागतम् ।

जगद्रूपतया वन्दे प्रत्यक्षं भैरवं वपुः ॥१७॥

(यत्)	= जो	(तत्)	= उस
आश्यानं	= घनीभूत	प्रत्यक्षं	= प्रत्यक्ष
चिद्रसस्य	= चित्तरस का	भैरवं	= भैरव के
ओघं	= समूह ही	वपुः	= स्वरूप को
जगद्रूपतया	= संसार के रूप में	(अहं)	= मैं
साकारत्वं	= साकारता को	वन्दे	= प्रणाम करता हूँ।
उपागतम्	= प्राप्त हुआ है		॥१७॥

भीरूणामभयप्रदो भवभयाक्रन्दस्य हेतुस्ततो

हृद्धाग्नि प्रथितश्च भीरुवृक्षामीशोऽन्तकस्यान्तकः।

भेरं वायति यः सुयोगिनिवहस्तस्य प्रभुर्भैरवो

विश्वस्मिन्भरणादिकृद्विजयते विज्ञानरूपः परः ॥१८॥

भीरूणाम्	=	सांसारिक दुःखों से डरे हुए मनुष्यों को	(यः)	=	जो
(यः)	=	जो	अन्तकस्य	=	महाकाल का भी
अभयप्रदः	=	अभय-दान देने वाला है	अन्तकः	=	संहार करने वाला है
भव-भय	=	संसार के भय से	(एवं)	=	तथा
आक्रन्दस्य	=	होने वाली चिल्लाहट का	सुयोगि	=	उत्तम योगियों का
(यः) हेतुः	=	जो कारण है	निवहः	=	समूह
ततः	=	और उसी कारण से	यः	=	जो कि
हत्	=	उनके हृदय रूपी	भेरं	=	काल को भी
धाम्नि	=	गृह में	वायति	=	सुखाते हैं अर्थात् संहार करते हैं
प्रथितः	=	प्रकट होता है	तस्य	=	उनका भी
च	=	और जो	यः	=	जो
भीरव	=	भयभीत पुरुषों को	प्रभुः	=	स्वामी है
रुचाम्	=	अभयदान रूपी अभिलाषा को पूर्ण करने में	(इत्येवं)	=	ऐसे लक्षणों से युक्त
ईशः	=	स्वतंत्र है	विश्वस्मिन्	=	संसार में
			भरणादिकृत्	=	पालन-पोषण करने वाले
			विज्ञानरूपः	=	विज्ञान स्वरूप
			परः भैरवः	=	परम भैरव की
			विजयते	=	जय हो ॥ १८ ॥

उद्धरत्यन्धतमसाद्विश्वमानन्दवर्षिणी।

परिपूर्णा जयत्येका देवी चिच्चन्द्रचन्द्रिका ॥ १९ ॥

(सा)	=	वह	जयति	=	जयनशील हो
आनन्दवर्षिणी	=	आनन्द बरसाने वाली	(या)	=	जो
परिपूर्णा	=	परिपूर्ण स्वरूप वाली	देवी	=	देवी
एका	=	अनुपम	विश्वं	=	संसार को
चिच्चन्द्र	=	चित् रूपी चन्द्रमा की	अन्धतमसात्	=	अज्ञान रूपी अन्धकार से
चन्द्रिका	=	ज्योत्स्ना	उद्धरति	=	उद्धार करती है ॥ १९ ॥

आनन्दसुन्दरपुरन्दरमुक्तमाल्यं मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य।

पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥२०॥

मञ्जीर	=	मञ्जीरों की	पुरन्दर	=	इन्द्र द्वारा
शिञ्जित	=	घनघनाहट के कारण	मुक्तमाल्यं	=	उपहार की गई माला वाला
मनोहरं	=	मनोहारी	अम्बिकायाः	=	माता दुर्गा जी का
महिषासुरस्य	=	महिषासुर के	मञ्जु	=	सुन्दर
मौलौ	=	सिर पर			

हठेन	=	आग्रहपूर्वक	पादाम्बुजं	=	चरण कमल
निहितं	=	रखा गया	मे	=	मेरी
(अत एव)	=	और इसी कारण	विजयाय	=	विजय के लिये
आनन्द	=	आनन्द से	भवतु	=	हो ॥ २० ॥
सुन्दर	=	सुन्दर अर्थात्			
		प्रसन्न बने हुए			

पौराणिक किंवदन्ती है कि महिषासुर नामक बलशाली दैत्य इन्द्र महाराज को बहुत सताया करता था। इस दुःख से छुटकारा प्राप्त करने के लिए इन्द्र ने श्री दुर्गाजी की शरण ली, भक्त के हितार्थ देवी दुर्गा सिंहारूढ़ बन कर महिषासुर के समीप आई तथा उसके सिर को अपने चरणों से ऐसा दबाया कि वह पाताल में जा पहुँचा। यह देखकर इन्द्र हर्षित हुए और दुर्गाजी के चरणों पर शिर झुकाने लगे, ऐसा करते हुए उनकी मोतियों की माला दुर्गाजी के चरणों पर गिर पड़ी। इस श्लोक में इन्द्र संबन्धनी मोतियों की माला से शोभित दुर्गाजी के उन्हीं चरणों के ध्यान की ओर संकेत है।

ये देवि! दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्थाः ये कालि ! कालघनपाशनितान्तबद्धाः।

ये चण्डि! चण्डगुरुकल्मषसिन्धुमग्नास्तान्पासि मोचयसि तारयसि स्मृतैव ॥२१॥

देवि	=	हे भगवती	चण्ड-	=	भयानक और
ये	=	जो लोग	गुरुकल्मष	=	बड़े बड़े पापों के
दुर्धर	=	असह्य	सिन्धु-	=	समुद्र में
कृतान्त	=	मृत्यु के	मग्नाः	=	डूबे हुए हैं
मुखान्तर	=	मुख में	(तैः)	=	उनके द्वारा
स्थाः	=	पड़े हुए हैं	स्मृता एव	=	स्मरण किये जाने पर ही
कालि	=	हे कालिका !	(त्वं)	=	तुम
ये	=	जो	तान्	=	उनको
काल	=	महाकाल के	(क्रमेण)	=	क्रमशः
घनपाश	=	बड़े भारी फंदे में	पासि	=	बचाती हो (मृत्यु मुख में पड़े हुए लोगों को)
नितान्त	=	पूर्णरूप में	मोचयसि	=	छुड़ाती हो और (कालपाश में फंसे हुए लोगों को)
बद्धाः	=	फंसे हुए हैं	तारयसि	=	पार ले जाती हो ॥ २१ ॥
(च)	=	और		=	(पाप सागर में डूबे हुए लोगों को)
चण्डि	=	हे चण्डिके			
ये	=	जो			

ब्रह्माण्डबुद्बुदकदम्बकसङ्कुलोऽयं मायोदधिर्विविधदुःखतरङ्गमालः।

आश्चर्यमम्ब झटिति प्रलयं प्रयाति त्वद्भयानसंततिमहावडवामुखाग्नौ ॥२२॥

अम्ब	=	हे माता	त्वत्	=	आपके
ब्रह्माण्ड	=	ब्रह्माण्ड रूपी	भयान	=	ध्यान की
बुद्बुद	=	बुलबुलों के	संतति	=	परम्परा रूपी

कदम्बक	=	समुदाय से	महा	=	बड़ी भारी
संकुलः	=	भरा हुआ	वडवामुखाग्नौ	=	वडवाग्नि के मुख में
(च)	=	और		=	पड़ते ही
विविध	=	भिन्न भिन्न प्रकार के	झटिति	=	तत्क्षण
दुःख	=	दुःखों रूपी	प्रलयं	=	नाश को
तरङ्गमालः	=	लहरों की माला को	प्रयाति	=	प्राप्त हो जाता है
	=	धारण करने वाला	(इति)	=	यह तो
अयं	=	यह	आश्चर्यम्	=	बड़े आश्चर्य की
माया-उदधिः	=	माया रूपी समुद्र		=	बात है ॥ २२ ॥

न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याविधिपूर्वकम्।

एवमेव शिवाभासस्तं नमो भक्तिशालिनम् ॥ २३ ॥

तं	=	उस	न जपतः	=	जपादि न करने पर
भक्तिशालिनं	=	भक्तिशाली जन को	अविधिपूर्वकं	=	और ध्यानादि विधि का
नमः	=	नमस्कार हो		=	पालन किये बिना
यस्य	=	जिसे	एवमेव	=	अकस्मात् ही
न ध्यायतः	=	न ध्यान करने पर	शिवाभासः	=	शिवजी महाराज का
				=	साक्षात्कार
			स्यात्	=	हो जाय ॥ २३ ॥

सर्व एव भवप्लवाभहेतुर्भक्तिमतां विभो ।

संविन्मार्गोऽयमाह्लाददुःखमोहैस्त्रिधा स्थितः ॥ २४ ॥

विभो	=	हे व्यापक प्रभु !	संविन्मार्गः	=	नीलपीतादि ज्ञान रूपी
आह्लाद	=	सत्त्वप्रधान सुख से		=	संसार का मार्ग
दुःख	=	रजप्रधान दुःख से	भक्तिमतां	=	भक्तजनों के लिए
मोहैः	=	और तमोगुण प्रधान	भवत्	=	आपके स्वरूप की
	=	मोह से	लाभ	=	प्राप्ति का ही
त्रिधा	=	तीन प्रकार से	हेतुः	=	साधन
स्थितः	=	ठहरा हुआ	(भवति)	=	बन जाता है
अयम्	=	यह		=	॥ २४ ॥
सर्वः	=	सारा			

सर्वाशङ्काशनिं सर्वालक्ष्मीकालानलं तथा ।

सर्वामंगल्यकल्यान्तं मार्गं माहेश्वरं नुमः ॥ २५ ॥

सर्व	=	सभी	कालानलं	=	कालाग्नि के तुल्य
आशङ्का	=	आशङ्काओं का नाश	तथा	=	और
	=	करने के लिये	सर्व	=	सभी
अशनिं	=	वज्र के समान	अमंगल्य	=	अमंगलता को नष्ट

सर्व	=	समूची	करने के लिये
अलक्ष्मी	=	दरिद्रता को भस्म करने में	कल्पान्तं = कल्पान्त के समान बने हुए
		माहेश्वरं	= महेश्वर भगवान् के
		मार्ग	= सत्यपथ की
		नुमः	= हम स्तुति करते हैं ॥ २५ ॥

दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते।

मोक्षायते च संसारो यत्र मार्गः स शाङ्करः ॥ २६ ॥

यत्र	=	जिस पथ पर चलने से	संसार	=	(यह भयंकर) संसार ही
दुःखानि अपि	=	अनन्त दुःख भी	मोक्षायते	=	मोक्ष की प्राप्ति का साधन
सुखायन्ते	=	सुखरूपता में ही दीख			बन जाता है।
		पड़ते हैं	सः	=	वही
विषमपि	=	विष भी	मार्ग	=	मार्ग तो
अमृतायते	=	अमृत बन जाता है	शाङ्करः	=	शङ्कर का मार्ग
च	=	और			कहलाता है ॥ २६ ॥

देव प्रसीद यावन्मे त्वन्मार्गपरिपन्थिकाः।

परमार्थमुषो वश्या भवेयुः गुणतस्कराः ॥ २७ ॥

देव	=	हे देव !	मे	=	मेरे
त्वन्मार्ग	=	आपके पारमार्थिक पथ में	वश्याः	=	वशीभूत
परिपन्थिकाः	=	विघ्न डालने वाले	भवेयुः	=	हो जायें
(एवं)	=	तथा	(तावत्)	=	तब तक
परमार्थ	=	परमार्थ-धन को	(त्वं)	=	आप
मुषः	=	छीनने वाले	प्रसीद	=	मुझ पर प्रसन्न रहें अर्थात्
गुणतस्कराः	=	इन्द्रिय रूपी चोर			मेरी सहायता करते
यावत्	=	जितने समय तक			रहें ॥ २७ ॥

कदा कामपि तां नाथ तव वल्लभतामियाम्।

यथा मां प्रति न क्वापि युक्तं ते स्यात्पलायितुम् ॥ २८ ॥

नाथ	=	हे प्रभो !	मां प्रति	=	मेरे प्रति
(अहं)	=	मैं	ते	=	तुम्हारा
तां	=	उस	पलायितु	=	(अपने स्वरूप को)
कामपि	=	अलौकिक			छिपाना
तव	=	तुम्हारे	क्वापि	=	कभी भी
वल्लभतां	=	प्रेमभाव को	युक्तं	=	उचित
कदा	=	भला कब	न	=	नहीं
इयाम्	=	प्राप्त करूँगा	स्यात्	=	होगा ॥ २८ ॥
यथा	=	जिस प्रेमभाव के प्रभाव से			

क्रमशः



शैवदर्शन के वातायन से

— प्रो० नीलकण्ठ गुट्ट

प्रत्यभिज्ञा— आत्ममहेश्वर की प्रत्यभिज्ञा अर्थात् अंतस् में अकस्मात् उदित होने वाली स्वरूपज्ञातृतामयी प्रकाशमानता को प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि पूर्व-मध्य एवं वर्तमान इन तीनों काल कोटियों पर समान रूप से प्रकाशमान होने पर भी भगवदिच्छा से ही वि-स्मृत जैसी अथवा मायीय अख्याति के आवरण में आच्छादित जैसी स्वरूप-जानकारी की, स्मर्यमाण रूप में नहीं प्रत्युत ईश्वर की ओर प्रगाढ़ अभिमुखीभावमयी दशा में, अकस्मात् भगवदिच्छा से ही अंतस में आलोकित होने की अवस्था को प्रत्यभिज्ञा कहते हैं।

प्रत्यभिज्ञा— (शब्द की व्युत्पत्ति) — यह शब्द “प्रति-अभि ज्ञा” इन तीन शब्द खंडों का समुच्चित रूप है। इनमें से ‘प्रति’ यह शब्द संसारभाव की विलोमता, ‘अभि’ शब्द स्वात्ममहेश्वर की ओर प्रगाढ़ अभिमुखता और ‘ज्ञा’ शब्द आकस्मिक ज्ञातृता की अभिव्यंजना करते हैं।

‘प्रति एवं प्रतीप’ आपस में समानार्थक हैं अतः दोनों समान रूप से आत्म-महेश्वर की अभिमुखता (प्रगाढ़ अभिमुखता) की अभिव्यंजना करते हैं। फलतः इस आत्म-अभिमुखता से जनित आत्म प्रकाशमयी ज्ञातृता ही प्रत्यभिज्ञा कहलाती है।

उन्मेष— दिव्य प्रकाशमय परमशिवभाव का बहिर्मुखीन प्रसार और अन्तर्मुखीन स्थिति ये परमेश्वरत्व की उन्मेषदशा एवं निमेष दशा कहलाते हैं। जिस पद पर ये दोनों (उन्मेष एवं निमेष) समरस बन जाते हैं। वही परप्रकाश की अवस्था ‘प्रत्यभिज्ञा’ कहलाती है।

अद्वैत— जहां दो की आभासमानता हो उसको द्वैत कहते हैं। द्विता द्वैत को उपजाती है। जहां दो का भाव न हो उसको कैवल्य अथवा ऐक्य माना जाता है। शैवमान्यता के अनुसार यही सैंतीसवां ‘ऐक्य-तत्त्व’ अपने पूर्ववर्ती छत्तीस तत्त्वों की आधारशिला है और इसी को शिव शक्ति समरसतामय जगदानन्द की अवस्था अथवा परशिव अवस्था माना जाता है।

महाफल— सब से उत्कृष्ट और समूची नील-मुख रूपिणी दिव्य संपदा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेना ही तो वह महान फल है जो सच्चे भक्तों को प्राप्त होता है।

भावना— बहुत गहरे अनुसन्धान को ‘भावना’ कहते हैं। अनुभवी जनों का कथन है कि सैकड़ों प्रकार के प्रतिबन्धक भी इस भावना को तनिक भी ठेस नहीं पहुंचा सकते हैं।

दास्य भाव— किसी भी सच्चे शैवयोगी को प्रत्यभिज्ञा पदवी पर आरूढ़ होने से

पहले दास्य-भाव पर प्रतिष्ठित होना आवश्यक है। दास्यभाव की भी उपलब्धि ईश्वरीय शक्तिपात से ही संभव हो सकती है जैसा कि भगवान् उत्पलदेव ने स्वयं ही कहा है-

“दास धाम्नि विनियोजितोऽप्यहं स्वेच्छयैव परमेश्वर त्वया।

दर्शनेन न किमस्मि पात्रितः पादसंवहनकर्मणापि वा”॥

निराभास— वह उत्कर्षपूर्ण तत्त्व जो ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, गणेश इत्यादि अनन्त प्रकार के आभासों से अतिगत और परमुखाप्रेक्षिता से बहुत दूर है।

दिदृक्षा— किसी भी पदार्थ के देखने की तीव्र इच्छा को दिदृक्षा (दृष्टुमिच्छा) कहते हैं।

दिव्यकरणबंध— यह अनुपायक्रम पर पहुंचे हुए साधकों का आसन है। इसको दूसरे शब्दों में दिव्यकरण भी कहते हैं।

सकृत्— इस शब्द का अर्थ है ‘एक ही बार’। परमात्मा के तीव्र-शक्तिपात वाले भक्तवर्यों को शांभव समावेश एक ही बार (सकृत्) हो जाता है और वे उस एक ही पलक में कृतकृत्य हो जाते हैं।

परमगुरुपाद— कश्मीर शैवदर्शन में भगवान् सोमानन्दपाद को परमगुरुपाद माना जाता है। उन्होंने सबसे पहले ‘शिव दृष्टि’ नामक प्रत्यभिज्ञा ग्रंथ लिखकर कश्मीर में प्रत्यभिज्ञा दर्शन का श्री गणेश किया है:-

‘महागुरुभिरुच्यते स्म-

शिवदृष्टिशास्त्रे यथा॥’

कादाचित्क— कभी कभार ही सिद्ध होने वाली क्रिया को कादाचित्क-क्रिया कहा जाता है।

अचिरद्युतिः— बिजली की अतितीव्र कौंध को अचिरद्युतिः कहते हैं।

विरक्ति— मन में सांसारिक सुखभोग के प्रति अरुचि का भाव उत्पन्न होना। सच्चे साधक के लिए इसकी महती आवश्यकता बताई जाती है।

विनेय— अति प्रतिभाशाली अन्तेवासियों को विनेय कहते हैं।

प्रमुषित— जो व्यक्ति पूर्णतया लुट गया हो उस को प्रमुषित कहते हैं।

स्वान्तर्निर्मग्नः— अपने अंतस में संवित्-रूप में ही पड़े हुए प्रमेयसम्भार को स्वान्तर्निर्मग्नप्रमेयसंभार कहा जाता है।

शाब्दी-भूमिका— वैखरी-वाणी।

प्रभविष्णुः— दुर्घट कार्यों को कर सकने वाला व्यक्ति ‘प्रभविष्णुः’ कहलाता है।

इन्द्रजाल— मायीय भ्रम = जादूगरी।

संवृतसौत्र निर्देश— अर्थ-गाम्भीर्य से युक्त सूत्रों की बातें।

योगक्षेम— यह शब्द ‘योग और क्षेम’ इन दो शब्दार्थों का एकीकृत रूप है। इनमें से ‘योग’ से न अपनाए हर वस्तु की उपलब्धि और क्षेम से उस उपलब्ध वस्तु का संरक्षण ये दो अर्थ समझे जाते हैं ॥

जय गुरुदेव

गीता-माहात्म्य

— सुश्री प्रभा देवी

गत् १९ अगस्त, भाद्रपद कृष्ण पक्ष सप्तमी जन्माष्टमी के दिन हम सबों ने सामुदायिक रूप से ईश्वर-आश्रम श्रीनगर में अति श्रद्धा-पूर्वक श्री गीता जी का सम्पूर्ण पाठ किया। सबों के पास गोरखपुरी 'गीता गुटका' की पुस्तकें हाथ में थी। मैंने सबों से सानुरोध विनम्रतापूर्वक कहा— ईश्वर-आश्रम में आने वाले सभी भक्त-जनों के पास तो अभिनव गुप्त जी की गीतार्थ-संग्रह की ही पुस्तिका होनी चाहिये जिसका हमारे आराध्य गुरु देव ने मुद्रण कराया है। जम्मू देहली तथा श्रीनगर के ईश्वर-आश्रम में इसी गीता की मान्यता होनी चाहिये। यह तो हमारे गुरुदेव की आज्ञा है। इसके साथ ही कई पढ़ने वालों को गीता-माहात्म्य के नव श्लोकों का ज्ञान भी नहीं है। खेद तो अवश्य हुआ मैंने उसी समय विचारा अगले मालिनी अंक में अर्थ सहित इन नव श्लोकों को पाठकों के हितार्थ लिखना लाभदायक रहेगा।

इसी हेतु ये श्लोक लिख रहे हैं:-

पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयं

व्यासेन ग्रथितां पुराण मुनिना मध्ये महाभारतम्।

अद्वैतामृतवर्षिणी भगवतीमष्टादशाध्यायिनी-

मम्बत्वामनुसन्दधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम् ॥ १ ॥

हे भगवती मां भगवद्गीते ! साक्षात् भगवान् नारायण ने अर्जुन के प्रति जिसका उपदेश दिया, पुराणों के रचयिता मुनिवर श्री वेदव्यास जी ने 'महाभारत' के भीतर जिसे स्थान दिया, जो अद्वैत-ज्ञान रूपी अमृत की वर्षा करने वाली और अठारह अध्यायों में विभक्त है तथा जो जन्म-मरण रूपी संसार से शत्रुता रखने वाली (संसार से नाता छुड़ाने वाली है) ऐसे स्वरूप वाली आप गीता जी का ध्यान मैं सदा करता हूँ ॥ १ ॥

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे ! फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।

येन त्वया भारत तैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥ २ ॥

विकसित कमल-पुष्प की पंखुडियों की भांति बड़े-बड़े नेत्रों वाले विशाल बुद्धि से युक्त भगवान् व्यास देव ! आपको सादर प्रणाम है। आपने ही अज्ञान अन्धकार दूर करने के लिये महाभारत रूपी तैल से लबालब भरे हुए गीता-ज्ञान रूपी दीपक को जलाया है अर्थात् प्रकाशित किया है ॥ २ ॥

प्रपन्न पारिजाताय स्तोत्रवेत्रैकपाणये। ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥ ३ ॥

जो भगवान् कृष्ण, शरण में आये हुए भक्तों को कल्प वृक्ष की भान्ति सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले हैं, एक हाथ में स्तोत्र रूपी बैत का चाबुक धारण किये

हुए हैं और दूसरा हाथ ज्ञान-मुद्रा का प्रदर्शक है ऐसे गीता-अमृत को दोहने वाले भगवान् श्री कृष्ण को नमस्कार है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥ ४ ॥

अर्थ - सभी उपनिषद जहां धेनु (गाय) का रूप है, देवकी-नन्दन श्रीकृष्ण दूध को दोहने वाले हैं, पांडु-पुत्र अर्जुन बछड़ा है तथा ज्ञानवान जन दूध को पीने वाले हैं। ऐसा गीता अमृत रूपी दूध सर्वोपरि श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूर मर्दनम्।

देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥ ५ ॥

मैं विश्व के देवाधिदेव उस भगवान् श्री कृष्ण को प्रणाम करता हूँ जो श्री वसुदेव जी के (भौतिक शरीर में) पुत्र हैं, कंस तथा चाणूर नामक राक्षसों को मारने वाले हैं और देवकी माता को पुत्र रूप में परम आनन्द देने वाले हैं।

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गान्धारनीलोत्पला

शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन वेलाकुला।

अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्तिनी

सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै रणनदी कैवर्तके केशवे ॥ ६ ॥

वह युद्ध रूपी नदी या कौरव रूपी संग्राम नदी जिसके दोनों तट भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य हैं, जयद्रथ जल है, गान्धार नरेश शकुनि जिसमें नील-कमल है, राजा शल्य घड़ियाल (जल-जीव) है, कृपाचार्य जिस नदी के प्रवाह तुल्य हैं, राजा कर्ण इस जल प्रवाह की तरङ्गे हैं, अश्वत्थामा और विकर्ण जिसमें भयंकर मगरमच्छ हैं, दुर्योधन ही जिसके भंवर हैं। ऐसे भयानक युद्ध रूपी नदी को पांडवों ने सहज ही पार किया। रहस्य यही था - भगवान् श्री कृष्ण ही उन्हें पार लगाने वाले कर्णधार (मल्लाह) थे ॥ ६ ॥

अब 'महाभारत' पुराण की महिमा कह रहे हैं:-

पाराशर्यवचः सरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटं

नानाख्यानक केसरं हरिकथासंबोधनाबोधितम्

लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा

भूयाद् भारतपंकजं कलिमलप्रध्वंसि नः श्रेयसे ॥ ६ ॥

यह महाभारत रूपी कमल, जो पराशर मुनि के पुत्र भगवान् व्यास जी की पवित्र वाणी रूपी सरोवर (तालाब) से विकसित हुआ है, गीता के ज्ञान-अमृत रूपी तीव्र सुगन्ध से महक रहा है, अनेक कथाओं, ऐतिहासिक, पौराणिक गाथाओं से युक्त होने से ऐसा प्रतीत होता है मानो केसर की लडियों से अलंकृत है, साथ ही भगवान् श्री हरि (नारायण) के वंश की कथाओं से विकसित हुआ है, ऐसा यह महाभारत रूपी पुष्प, जिसका सभी संसार के सज्जन रूपी भ्रमर रात-दिन रसपान करके प्रसन्न रहते हैं। वही यह कमल-तुल्य बना हुआ महाभारत ग्रन्थ कलियुग में हमारी (भेद दृष्टि) रूपी मलिनता

को हटा कर हमारा कल्याण करे।

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।

यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्॥ ८॥

जिनकी कृपा, गूंगे को बोलने वाला बना देती है और लंगड़ा सहज में कठिन पर्वत पर चढ़ जाता है। भाव यह कि अशक्त व्यक्ति को बलवान बना देती है। उन परमानन्द से पूर्ण माधव-लक्ष्मी पति श्री नारायण के अवतार भगवान् श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ।

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुवन्ति दिव्यैः स्तवै

र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।

ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो

यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः ॥ ९॥

ब्रह्मा, जल-देवता वरुण, इन्द्र, रुद्र और वायु-देवता आदि दिव्य-अलौकिक स्तुतियों से जिनका यशोगान करते हैं, सामवेद का गान करने वाले विद्वान, वेदों के अंग बने हुए क्रम-उपनिषदों आदि से जिनकी महिमा का बखान करते हैं, योगी जन ध्यान में मन को एकाग्र बना कर भगवत्परायण होकर जिनका साक्षात्कार करते हैं, देवता और राक्षस भी जिनकी महिमा को नहीं जानते हैं, उन परमात्मा रूप श्री कृष्ण को नमस्कार है।

गुरु-भक्त प्रिय पाठकगण इन ऊपर-वर्णित श्लोकों को कंठस्थ करें। तब फिर श्री गीता जी का पाठ करें। गुरु-कृपा से अन्तःकरण पवित्र होगा साथ ही मनोवांछित फल भी प्राप्त होगा।



लल्लेश्वरी

(जीवन - व्यक्तित्व एवं शिक्षायें)

— Dr. Jagir Singh

Reader, Sanskrit Deptt., Jammu University, Jammu.

जीवनवृत्त :- भारत के इतिहास में मध्यकाल भक्तिकाल के नाम से विख्यात है। चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में यहाँ अनेक सन्त-महात्माओं एवं सूफी फकीरों ने अवतरित होकर अज्ञान-अन्धकार एवं दीन-हीनता से दुःखी जनता के मार्ग को अपने तत्त्वज्ञान के सुगम उपदेशों से आलोकित किया है। इन सज्जन पुरुषों ने बिना किसी जाति-पाति, वर्ण, देशादि के भेद से एक ईश्वर का ज्ञान दिया। सच्चा मानव जीवन प्राप्त कराने के लिये राग-द्वेष एवं पाखण्डबाजी का जोरदार खण्डन किया। इनकी वाणी जनता की तत्कालीन भाषा, क्षेत्र एवं वातावरण से उपरंजित थी। इसलिये वेद शास्त्र एवं उपनिषदों इत्यादि का दुर्बोध रहस्यज्ञान भी उन्हें सहजरूप में प्राप्त हुआ। गुरु नानक, कबीर, रविदास, मीरा इत्यादि जिस प्रकार भारत के पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि राज्यों के निवासी होने पर भी समस्त देश में सम्मान के पात्र रहे हैं। यही नहीं, इनकी शिक्षायें, चूँकि मानवमात्र की भलाई के लिये थी, इसलिये विश्वभर में इनको यथेष्ट सम्मान मिला है।

इसी प्रकार, चौदहवीं शताब्दी के मध्य काल (1350-1450 ई०पू०) में भारत के शिरोमणि कश्मीर की उच्च आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक सौन्दर्य मूर्ति एवं पावन स्थली में एक महान योगेश्वरी लल्लेश्वरी देवी का आविर्भाव हुआ, जिसको आज भी विशेषकर कश्मीर में अत्यन्त सम्मानपूर्वक जन-जन के हृदय पल में निहारा जा सकता है। इनको “लल्ला” या ललद्यद (लल्ल माता) भी कहा जाता है। इनकी जीवनी के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं है। किन्तु इस राज्य के लोगों में प्रचलित जन श्रुतियाँ परम्परागत किंवदन्तियाँ और लोक प्रसिद्ध कथानक प्रचलित हैं, जो कालान्तर में लिपिबद्ध भी हो जाने से इनके सम्बन्ध में कुछ सीमा तक पटाक्षेप का अनावरण करते हैं। इनके अनुसार, वह श्रीनगर से दक्षिण-पूर्व की ओर छः मील की दूरी पर स्थित सिंहपुर गाँव में एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुई थी। वहाँ से दो मील की दूरी पर अवस्थित प्रसिद्ध नगर पद्मपुर (पाम्पोर) में विवाही गई थी। ससुराल में इनको पद्मावती कहा जाता था। इनकी सास बड़ी क्रूर स्वभाव की थी। उसकी अपनी भोली-भाली विनम्र बहू फूटी आँख नहीं सुहाती थी। वह इनके साथ बहुत ही बुरा एवं अपमानजनक व्यवहार करती। बदनाम करने के लिये विविध प्रकार के दोषारोप करती। यहाँ तक ही सीमित नहीं, इनके विरुद्ध इनके पति के कान भरती और मन मुटाव बढ़ाती। अपमानजनक व्यवहार करती। इसके विपरीत “लल्ला” तन-मन लगाकर घर का पूरा कामकाज करती। प्रत्येक

ढंग से घर में सुख-शान्ति बनायें रखने का पूर्ण प्रयत्न करती। उनकी सास इनको भरपेट खाने को भी नहीं देती। परन्तु लल्ला माता सब कुछ सहर्ष सहन कर लेती और उफ तक न करती।

इनके घरेलू दुःखमय जीवन के विषय में तथ्य उस समय प्रकाश में आया, जब एक दिन इनकी ससुराल-घर में किसी उत्सव के उपलक्ष्य में भोज दिया गया। जब उस दिन ललछद नदी घाट पर गई तो वहाँ इनकी अपनी कुछ सहेलियों से भेंट हुई। हंसी मखौल की बातों में उन्होंने इनसे पूछा- “आज आपने खूब पक्वान खाये होंगे।” इस पर इन्होंने कहा—

“हुण्ड मारितन या कुण्ड, ललि निलवठ चलि न जांह”

अर्थात् वे भेड़ को मारे या मछली पकायें, “लल” का भाग पत्थर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। संयोग से इनके श्वसुर ने कहीं पास में ही स्थित होने से यह संवाद सुन लिया। उनको भी विस्मय हुआ। इसीलिये उन्होंने घर घर जाकर इस बात की छानबीन की और उन्हें ज्ञात हुआ कि जो कुछ “लल्ला” ने कहा था, वह बिल्कुल सत्य था। वास्तव में उनकी सास थाली में खाना परोसते समय उबले हुये चावलों के कुछ दानों के नीचे एक सिलबड़ा रख देती थी, ताकि थाली भरी हुई दिखाई दे। परन्तु इस घटना से पहले “लल्ला” ने कभी भी किसी से इस बात की चर्चा नहीं की थी। सब कष्टों को ईश्वर-देन समझकर झेल लिया था।

उस समय की प्रथानुसार ललछद ने अल्पायु में ही कुल गुरु सिद्ध “बायू” से उपदेश लिया हुआ था। वे प्रायः घर से निकलकर कहीं दूर चली जाती और एकान्त में योग-साधना में निमग्न रहती। उनकी सच्ची निष्ठा, त्याग, सहनशीलता और लक्ष्य की प्राप्ति के लिये दृढ़ एकाग्रता शीघ्र ही रंग लाई। उन्होंने अध्यात्म साधना में यथेष्ट सिद्धि प्राप्त करके अपने गुरु को भी मात दे दी। इस सम्बन्ध में अब तक अनेक जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। अध्यात्म-लग्न की प्रगाढ़ता के कारण ही एक दिन इन्होंने गृह त्याग का पक्का निश्चय कर लिया और एक मस्त कलन्दर की भाँति जहाँ-तहाँ अर्ध-नग्न अवस्था में घूमने लगी। अपनी ऐसी स्थिति के विषय में उन्होंने स्वयं कहा कि उन्हें अपने गुरु के वचनों पर अटूट विश्वास था। उनसे बार-बार प्रार्थना करने पर यही दीक्षा मिली—

“न्यबर दोपनम अंद्रिय अचुन”

अर्थात् बाहर से भीतर को जा। मुझ लल्ली ने वही आदेश और उपदेश माना तथा इसी कारण मैं दिगम्बर अवस्था में नाचने लगी। सूफी फकीर बुल्लेशाह के गुरु ने भी उसको ऐसा ही कहा था—

“बुल्लेशाह शब्दा की पानां। ऐधरों पुटनाओधर जानां॥”

तथा धर्मराज ने नचिकेता को भी ऐसा ही कहा था

“पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयंभूस्तस्मात् पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।

कश्चित धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥

—कठोपनिषद्

इसके पीछे उनका तर्क यह था कि श्रद्धा और विश्वासपूर्वक गुरु की शिक्षा मानने से ही लक्ष्य की प्राप्ति निस्संदिग्ध हो सकती है। जैसा कि श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता में कहते हैं—

“श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तथा संशयात्मा विनश्यति”

और तन्त्रागम — “न शङ्कापि विशङ्केत् निशङ्कितमिदं पदम्”

इसी प्रकार रामायण में—

“भवानी शङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ।

याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्तः स्थितं विभुम्॥

लल्लेश्वरी का इस विषय में यह मत था जो अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण एवं बलवान् होता है, वह राज्य का भागीदार बनता है। जो तप-दान-पुण्य कर्म करता है, वह स्वर्ग का अधिकारी बनता है। इसी प्रकार जो आस गुरु की शिक्षाओं का पालन करता है, वह सहज ही स्वरूप (आत्मसाक्षात्कार) पा लेता है। इसलिये मनुष्य अपने भले-बुरे का कर्ता स्वयं है। गीता भी यही कहती है—

यो यच्छ्रद्धा स एव सः एवं

उपनिषद्- यथा कामः तथाचारी।

एवं न काष्ठे न पाषाणे, देवता विद्यते भावनायाम्

वा रामायण—

जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूर्ति तिन देखी तैसी॥

अपने “लल” नाम के विषय में उन्होंने स्वयं कहा है कि जब मैं अत्युत्कृष्ट जिज्ञासा से सम्पन्न होकर पूर्ण समर्पण करके ईश्वर के आगे आँचल फैलाये बैठ गई, तो मेरा नाम “लल” रूप से प्रसिद्ध हो गया—

“म्य ति कला गनेयि, जोगमस तती”

“त्यलि ललनाव द्राम यलि दलि त्राविमस् ततिय” मीराबाई की भी भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति ऐसी ही पूर्ण समर्पण की भावना थी—

“लोकलाज छाँड़ि मीरा सांवरे (संग नाचि रे)।

इनके “ललघद” के रूप में नाम प्रसिद्धि का दूसरा कारण यह बतलाया जाता है कि इनके उदर का अधोभाग (जिसे कश्मीरी में “लल” कहा जाता है) बढ़ गया था और उनके गुसांग पर आवरण का काम देता था। कहा जाता है कि ऐसी ही अवस्था में उनकी

भेंट प्रथम बार “शाह हमदान” से हुई थी। उनके सामने आते ही ये समीप के नानबाई की जलती हुई भट्टी में जा छुपी और थोड़ी देर पश्चात् वहाँ से चमकदार सुन्दर उज्ज्वल पहरावे में पुनः प्रकट हो गई। जब उनसे इसका कारण पूछा गया, तो इन्होंने कहा कि मैंने जीवन में पहली बार एक पुरुष (ईश्वरभक्त पुरुष) को देख लिया है। शाह हमदान 1379-80 से 1385-86 ई०पू० तक कश्मीर में रहे थे। कहा जाता है कि इस समय के मध्य में उनके साथ इनकी अनेक बार ज्ञान चर्चायें होती रही और ऐसी भी प्रसिद्धि है कि श्रीनगर में स्थित “चार शरीफ के शेख नुरुद्दीन वली से भी इनकी कई बार मुलाकात हुई थी, जिससे इन्होंने उनको अपनी योगसिद्धि तथा अध्यात्म दर्शन से प्रभावित किया था। ऐसी महायोगिनी एवं अद्वैतशैवी साधना की साक्षात् मूर्तिरूपा का शिवधाम गमन दीर्घायु व्यतीत करने के बाद बिजबिहाड़ा नामक गाँव में जामा-मस्जिद के बाहर हुआ था।

व्यक्तित्वः— लल्लेश्वरी एक अत्युच्च व्यक्तित्व की मालकिन थीं उनके आचार-व्यवहार एवं विचारों में उनका आध्यात्मिक चरित्र दिखाई देता है।

इनके जीवन के साथ अनेक चमत्कार जुड़े हुये हैं, यद्यपि इन्होंने कभी भी इनको अपने जीवन में अधिमान नहीं दिया। प्रत्युत चमत्कारों वा करिश्मों से उनको घृणा थी। वे ऐसी प्रक्रियाओं को एक मदारी का कार्य समझती थी। उनके अनुसार बहती नदी को रोक लेना, भड़कती हुई अग्नि को बुझा देना, आकाश गमन करना, काष्ठ-धेनु से दूध दुहना-ऐसी सभी हरकतें कपट चरित होती है—

जल थमवुन हुतवाह तुरनावुन ऊर्ध्वगमन पैरव चरिथ।

काठधेनि दूध श्रमावुन अन्ति सकल कपट चरिथ॥

वह एक पूर्ण एवं सफल शिव-योगिनी थी। त्रिक् शास्त्र के रहस्यों और तान्त्रिक साधनाओं से सर्वथा परिचित थी, ऐसा उनकी वाणी (वाखों) से स्वतः स्पष्ट है। उनमें बार-बार प्राण-अपान, नाद-बिन्दु, कुण्डलिनी योग कक्षाओं और ब्रह्मरन्ध्र आदि का वह उल्लेख करती है। उनकी मान्यतानुसार परमशिव अकुल हैं और शक्ति कुल रूप है। वह शिव का ही दूसरा रूप (Form) है। माया भी एक शक्ति है, भ्रान्ति नहीं। विश्व शक्ति (universal Power) का ही विकास होने से सत्य है।

उनका हृदय द्वैत भावना से शून्य था। वह सर्वत्र चराचर जगत् में एक ही अद्वयमयी परमसत्ता का अवलोकन करती थी। उनका मन सांसारिकता से ऊपर उठकर सार्वभौमता को प्राप्त कर चुका था, जिससे धर्म-अधर्म, भक्ष्य-अभक्ष्य, हिन्दू-मुस्लिम, जाति-पाति का भेद खत्म हो चुका था। वे जो भी कार्य करती थी, परापूर्णा का ही रूप होता था, ईश्वर-आराधना ही होना था। जो कुछ बोलती ईश्वर नाम ही होता एवं जो कुछ देखती, सब शिवरूप होता—

उनकी दृष्टि में जल-थल-नभ में सर्वत्र शिव ही था- इसलिये भेद कैसा ?

“शिव छुम थलि थलि रोजान, मोजान ह्युंद त मुसलमान”

चूँकि उनको शिव के अतिरिक्त कुछ नज़र ही नहीं आता था, इसलिये पथ्य अपथ्य, राग द्वेष किससे करती ?

“जनस अंदर केवल जोनुम, अनस ख्यनस कुस छुइ ईश”

वे अपने अन्दर ही ईश्वर प्राप्ति से सदा हर्षित एवं उल्लसित रहती थी।

इनके जीवन पर सूफी सन्तों का भी प्रभाव था एवं उनपर इनके दर्शन का भी पर्याप्त प्रभाव था। इसलिये इनकी विचारधारा में एक अद्भुत समन्वय का सामरस्य था, जिसका हिन्दू-मुसलमान एवं सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों पर गहरा असर (Effect) पड़ा। यही कारण है कि आज भी हिन्दू-मुस्लिम समान रूप से इनकी वाणी का सम्मान करते हैं, जो कश्मीरियत अथवा वहाँ की संस्कृति (Culture) की एक पहचान है।

इनकी भाषा एवं शैली लोकभाषा ही थी इसलिये संस्कृत फारसी की अपेक्षा अधिक सुग्राह्य थी, जिसका मुख्य लाभ यह हुआ कि कश्मीर अद्वैत शैव दर्शन का जन-मानस पर आसानी से प्रभाव अङ्कित हो गया।

अतः स्पष्ट है कि ललद्बद कश्मीर की एक महान अद्वैत शैवी योगिनी थी, जिनका हिन्दू-मुस्लिम एवं विशेषकर कश्मीरी संस्कृति पर अत्यधिक प्रभाव है। उनका स्वयं का जीवन तप, त्याग, प्रेम, सद्भाव, समन्वय, परोपकार, धैर्य, सहनशीलता, ईश्वर-भक्ति का ज्वलन्त उदाहरण है। इनकी शिक्षाओं में सहज विचार, मन विजय जग विजय, सम्यक् आचार-व्यवहार एवं आहार, भुक्ति में भी मुक्ति, समता में ही ईश्वर प्राप्ति, आत्मा नित्य, संसार परिवर्तनशील, ऊँकारजाप तथा सभी नाम एवं रूपों में एक ही ईश्वर आदि-आदि प्रमुख हैं— ॐ।





ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Srinagar Ashram:

Ishber Nishat,
P.O. Brain,
Srinagar (Kashmir)-190 021
Tel. : 0194-2461657

Jammu Ashram:

2, Mohinder Nagar,
Canal Road,
Jammu (Tawi)-180 016
Tel. : 0191-2501199, 2555755

Delhi Ashram:

R-5, Pocket 'D',
Sarita Vihar,
New Delhi-110 044
Tel. : 011-26958308, 26974977

(1)

No.:IAT/1082/cont./03

Jammu
August, 2003

Whole of the Guru Parivar was shocked to learn about the sad demise of Sh. Badri Nath Kotru on 20.07.2003 (Sunday) after some ailment at Pune. He like his family members, was a very humble and noble soul.

He was an ardent disciple of Gurudev Ishwar Swaroop Ji Maharaj.

The gathering prayed to Guru Dev to bestow peace to the departed soul and lead it to the regions of light and salvation into which it has just entered, and also give enough courage to his daughters and other family members to bear this great loss.

It is desired that these sentiments be conveyed to the concerned.

Sd/-

(B. N. Koul)

Trustee

(2)

No.:IAT/cond./03/1097

Jammu
26th August, 2003

Whole of the Guru-Parivar (Family) was shocked to learn though late rather very late, that one of the dearest disciples of Guru-Dev, viz., Mrs. Danish Hughes had lost her brother and father, just one after another, in a very short span of time a couple of months back.

They sat in silence and prayed to Gurudev to shower his Bliss to the

departed souls and also lead them to the region of light to which these just entered, also prayed that he gives enough courage to Guru-sister Danish and the other members of the family to bear this great loss.

It was also desired that these sentiments be intimated to Mrs. Danish Hughes.

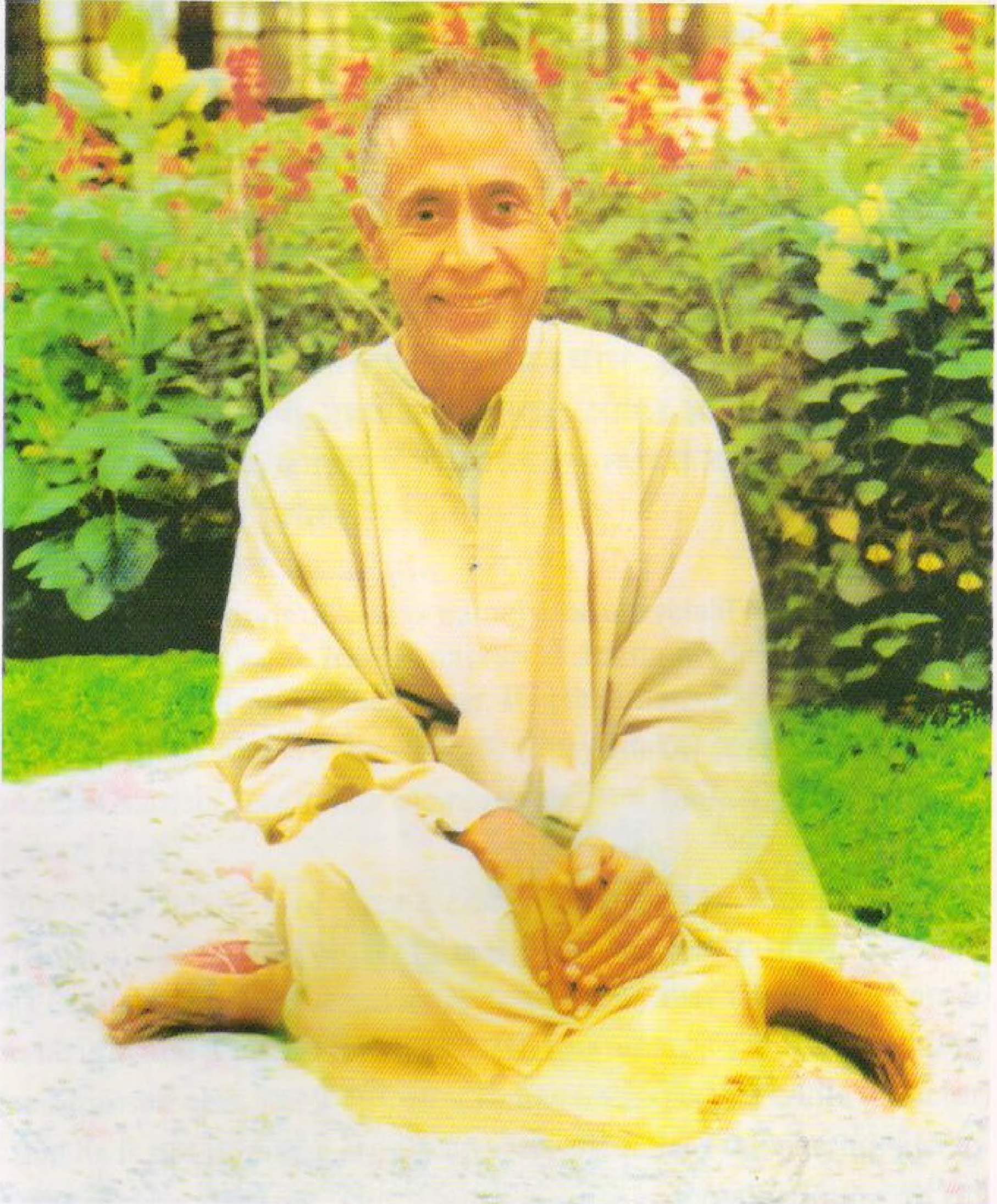
Sd/-
(B. N. Koul)
Trustee

N.B. : *Similar condolence meetings were held on the stipulated dates at Srinagar and Delhi Ashrams also and two minutes silence was observed for the upliftment of departed souls. May Sadguru Maharaj bestow eternal peace and relieve them from the pangs of life and death.*

List of Cassettes available in the Ashram (Library for reference & Study)

1. Shivastotravali with Kashmiri Translation by Swami Ishwarsarūp ji
2. Bhagwad Geeta with Kashmiri Translation by Swami Ishwarsarūp ji
3. Shiv Sutra with Kashmiri/English translation by Swami Ishwarsarūp ji
Lecture - R.N. Mandir, Jammu,
Radio talk - Sqr Abayasa-Practicé (Pranayama)
4. Amriteshwar Mantar - Translation by Swami ji
Old Birthday Pooja Cassettes - wef 78, 80, 81, 84, 85, 86, 87, 88
5. Para Praves Ka with Kashmiri translation by Prof. N.K. Gurtoo
6. Sampanchasika with Kashmiri Translation by Prof. N.K. Gurtoo
7. Kalka Stotra with Kashmiri translation by Prof. M.L. Kukiloo
8. Panchastavi text by Sushree Prabha Devi ji
9. Gurustuti Cassette by Mrs. Naina Saproo Trisal
10. Lal Wakhs - Casette by Mrs. Arti Tiko Koul
11. Bhagwat Geeta text by Shri Udhay Nath Tikoo
12. Mukund Mala K. Translation by Sh. J.N. Kaul Kamal
13. द्वादशकाली by D.N. Ganjoo
14. कूष्माडपाठ by Pt. Niranjana Nath Handoo
15. बहुरूपगर्भ by Mrs. Naina Saproo Trisal
16. तंत्रालोक कश्मीरी व्याख्या Swami Ishwarsarūp ji
17. महार्थमंजरी कश्मीरी व्याख्या Swami Ishwarsarūp ji

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज



आविर्भावदिवस
9-5-1907

महासमाधिदिवस
27-9-1991